अज्ञेय काव्य : व्यक्ति और समाज

Dr.Renu Bhatia
Head,Hindi Department
G.V.M.girls College, Sonepat

कविवर अज्ञेय हिन्दी साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर ह। अधिकतर विद्वान अज्ञेय को एक व्यक्तिवादी कवि मानते हैं। ऐसे आलोचकों को कवि ने 'भवन्ती' में जवाब देते हुए कहा है कि – मैं नागरिक भी हूँ, कवि भी हूँ। हर समय दोनों हूँ दोनों में से कोई सा भी अधिकार छोड़ना नहीं है।'[1] मेरी दृष्टि में प्रयोगवादी कवि अज्ञेय व्यक्तिपरक एवं सामाजिक दोनों हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि 'व्यक्ति का अपने प्रति उत्तरदायित्व को प्रथम मानता हूँ, समाज के प्रति भी' साथ ही वह कहते हैं कि व्यक्ति का समाज के प्रति एक दायित्व भी होता है, यानि समाज के प्रति दायित्वबोध व्यक्ति के अन्दर होना एक आवश्यक स्थिति है। बिना इस दायित्वबोध को स्वीकार किए व्यक्ति न तो समाज का अंग बन सकता है और न ही अपने व्यक्तित्व को विकास कर सकता है। व्यक्ति जिस सामाजिक परिवृत्ति में रहता है उससे वह बहुत कुछ ग्रहण करता है और साथ ही वह समाज को भी कुछ न कुछ नया प्रदान करता है।[2] अतः अज्ञेय व्यक्ति और समाज का अविछिन्न सम्बन्ध मानते हैं।

अज्ञेय की आत्मबोधपरक कविताओं में मानव का वैयक्तिक रूप मुखरित है। 'सागर मुद्रा' में वह व्यक्तित्व की खोज करते हुए कहते हैं कि –

मुझको और मुझको और मुझको
कहीं मुझ से जोड़ दो।[3]

अज्ञेय समाज को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी निज इयत्ता अथवा वैयक्तिकता को समापन नहीं करना चाहते। 'हम हैं दीप' कविता से एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

किन्तु हम है द्वीप
हम धाम नहीं हैं।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से द्वीप है स्त्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं क्योंकि बहना रेत होना है।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।
पैर उखड़ेंगे। प्लवन होगा। ढहेंगे। सहेंगे। बह जायेंगे।[4]

उपर्युक्त कविता से स्पष्ट है कि कवि समाज में रहते हुए अपनी स्वतन्त्र इयत्ता की कामना करता है।

अज्ञेय मानवतावादी कवि हैं इसलिए वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक हैं। वह स्वयं को मानव से मानव को जोड़ने वाला सेतु मानते हैं –

मैं सेतु हूँ
वह सेतु
जो मानव से मानव का हाथ मिलाने से बनता है
जो हृदय से हृदय को
श्रम की शिखा से श्रम की शिखा को
कल्पना के पंख से कल्पना के पंख को
विवेक की किरण से विवेक की किरण को
अनुभव के स्तम्भ से अनुभव के स्तम्भ को मिलाता है
जो मानवता को एक करता है।[5]

इस प्रकार कवि की मानवतावादी दृष्टि में व्यक्ति ओर समाज अन्योन्याश्रित है। कवि समाज को महत्ता देते हैं लेकिन व्यक्ति की उपेक्षा करके नहीं। वस्तुतः वह ऐसे समाज के पक्षधर हैं जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व भी बरकरार रहे। कवि ऐसे व्यक्तिवाद को प्रश्रय देते हैं जो समाज व मानवतावाद का समर्थक हो। 'यह द्वीप अकेला' कविता कवि की इसी विचारधारा की पोषक है।

यह समिधा' ऐसी आग हठीला बिरला सुलगायेगा
यह अद्वितीय : यह मेरा! यह मैं स्वयं विसर्जित
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा,
है गर्व भरा मदमाता, पर,
इसको भी पंक्ति को दे दो।[6]

यहाँ 'दीप' व्यक्ति और पंक्ति समाज का प्रतीक है। कवि व्यक्ति के अस्तित्व को अक्षुण्ण रखते हुए उसे समाज में सम्मिलित करना चाहता है। अतः कवि की वैयक्तिकता सामाजिकता की ओर अग्रसर हुई है।

अज्ञेय व्यक्ति आर समाज का प्रगाढ़ सम्बन्ध मानते हैं तथा व्यक्ति का समाज के साथ अपने प्रति भी उत्तरदायित्व मानते हुए कहते हैं कि 'व्यक्ति अपने सामाजिक संस्कारों का पुंज भी है, प्रतिबिम्ब भी, पुतला भी, इसी तरह वह अपनी जैविक परम्पराओं का भी प्रतिबिम्ब और पुतला है। – जैविक समाज के विरोध में नहीं, उससे अधिक पुराने और व्यापक और लम्बे संस्कारों को ध्यान में रखते हुए। फिर वह इस दाम पर अपनी छाप भी बैठाता है, क्योंकि जिन परिस्थितियो से वह बनता है उन्हीं को बनाता और बदलता भी चलता है। यह निज पुतला और जीव नहीं है, वह व्यक्ति है बुद्धि–विवक सम्पन्न व्यक्ति।[7]

अज्ञेय का समाज एवं व्यक्तिपरक दृष्टिकोण आधुनिक विचारधारा के अनुरूप है। उन्हें सांचे ढले समाज व व्यक्ति में विश्वास नहीं। क्योंकि समाज का परिवर्तन व्यक्ति के माध्यम से होता है। अतः वह चाहते हैं कि व्यक्ति स्वयं समस्त कुंठाओं से रहित हो तभी एक स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक हो सकता है –

अच्छी कुण्ठा–रहित इकाई
सांचे–ढले समाज से
अच्छा अपना ठाठ फकीरी
मंगनी के सुख समाज से
अच्छे
अनुभव की भट्‌टी में तपे हुए कण दो कण
अन्तर्दृश्टि के।[8]

अज्ञेय ने न केवल मनोवैज्ञानिक एवं आधुनिक धरातल पर व्यक्ति और समाज के संबन्धों की अभिव्यक्ति की है बल्कि एक कवि व विद्वत जन होने के नाते समाज में व्याप्त समस्याओं का अपने काव्य में चित्रण कर अपने उत्तरदायित्व का भी निर्वहन किया है। 'घृणा का गान' कवित में कवि समाज एवं परिवेश से सम्पृक्त हो शोषण के विरूद्ध रण–भेरी छेड़ता है –

तुम, सत्ताधारी, मानवता के भाव पर आसीन,
जीवन के चिर–रिपु विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन,
तुम दुश्मन के देव। सुनो यह रणभेरी तान –
आज तुम्हं ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।[9]

इसी प्रकार कवि नागरीय समाज में दिन–प्रतिदिन बढ़ती आत्म–केन्द्रीयता एवं स्वार्थ प्रवृत्ति से संतप्त है। वह पैना व्यंग्य करते हुए कहता है –

सांप तुम सभ्य तो हुए नहीं, न होंग
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डसना, विश कहाँ पाया?[10]

इसी प्रकार 'अखण्ड ज्योति, रक्वस्नाव वह मेरा साकी, बंदी स्वप्न, में वहाँ हूँ, टेसू आदि कविताओं में सामाजिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। स्वयं कवि का कथन है – ''मैं अखिल विश्व की पीड़ा संचित कर रहा हूँ.... क्योंकि मैं जीवन का कवि हूँ? अतः पीड़ा संकलित करने वाला जीवन का कवि केवल वैयक्तिक कैसे हो सकता है?[11] निष्कर्षतः हम राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में कह सकते हैं कि अज्ञेय व्यक्तिवादी सौन्दर्य चेतना से युक्त होने पर भी समाजवादी चेतना से संपृक्त है। मानवता में उनकी आस्था है और उनका समाजबोध औपचारिकता मात्र नहीं है। कवि की चेतना में मनुष्य मात्र की वेदना धड़कती है।'[12] अतः कविवर अज्ञेय के काव्य में व्यक्ति एवं समाज दोनों मुखर हैं, प्रतिबिम्बित हैं।

सन्दर्भ–सूची

1. अज्ञेय : भवन्ती, **पृ॰ 88**
2. रमेश ऋषिकल्प : अज्ञेय के विचार–बिन्दु, **पृ॰ 37**
3. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार, **पृ॰ 68**
4. सच्चिदानन्द वात्स्यायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य, **पृ॰ 97**
5. अज्ञेय : इन्द्रधनुष रोंदे हुए य, **पृ॰ 20–21**
6. अज्ञेय : बावरा अहेरी, **पृ॰ 54**
7. अज्ञेय : आत्मनेपद (द्वि॰ संस्करण), **पृ॰ 74**
8. अज्ञेय : अरी ओ करूणा प्रभामय, **पृ॰ 16**
9. अज्ञेय : पूर्वा, **पृ॰ 48–49**
10. अज्ञेय : इत्यलम, **पृ॰ 46**
11. डॉ॰ राजेन्द्र प्रसाद : अज्ञेय : कवि और काव्य, **पृ॰ 149**